भ्रष्टाचार के मुद्दे पर सरकार का स्कोर कार्ड

भ्रष्टाचार का घुन हमारे समाज और देश को लंबे समय से खाए जा रहा है। 2014 में भाजपा ने देश से इस बीमारी का सफाया करने के अपने वायदों के साथ बड़ी जीत दर्ज की थी। परन्तु पिछले पाँच वर्षों में लगातार भ्रष्टाचार रोधी नियम-कानून एवं संस्थाओं पर हमला किया जा रहा है। बैंकों से जुड़ी घपलेबाजी और रफाल सौदे में हुए भ्रष्टाचार के आरोपों ने मोदी सरकार की 'न खाऊँगा, और न खाने दूँगा' वाली छवि को धूमिल कर दिया है। रोजमर्रा के कामकाज में होने वाले भ्रष्टाचार को रोकने के लिए भी कोई कदम नहीं उठाए जा रहे हैं। इसका सीधा प्रभाव जन-सेवाओं की दुर्गति के रूप में देखा जा सकता है।

कुछ प्रमाण

- 2015 में सरकार ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम में सुधार प्रस्तावित किए थे। इस प्रस्ताव में भ्रष्टाचार की परिभाषा के दायरे को घटा दिया गया था। भ्रष्टाचारी के विरूद्ध दिए जाने वाले साक्ष्यों की सूची को बढ़ा दिया था और मुखबिरों के लिए कठिनाई उत्पन्न कर दी गई थी।

भ्रष्टाचार के आरोपी अधिकारियों के रक्षा कवच को मजबूती दे दी गई। जाँच एजेंसियों को सरकारी स्वीकृति के बगैर भ्रष्ट अधिकारियों से पूछताछ करने के अधिकार पर भी रोक लगा दी गई। भ्रष्टाचार की खोजबीन करने वाले बहुत से आरटीआई कार्यकर्ताओं की हत्या कर दी गई।

- पिछले कुछ महीनों में सीबीआई के निदेशक का मनमाने ढंग से स्थानांतरण करके उसकी स्वायत्तता पर अंकुश लगाने का प्रयास किया गया। संस्था को सरकारी प्रभाव से बचाने के लिए इसकी चयन समिति में प्रधानमंत्री, लोकसभा में विपक्षी दल के नेता और सर्वोच्च न्यायाधीश को रखा गया है। सरकार ने चयन समिति से सलाह-मशविरा किए बिना ही निदेशक को इस पद से हटाकर एक अंतरिम निदेशक की नियुक्ति कर दी। इससे संस्था की विश्वसनीयता को ऐसी ठेस लगी, जो पूर्व वर्षों में कभी नहीं लगी थी।

बाद में सरकार के इस निर्णय को गैर कानूनी बताते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने इस पर रोक भी लगा दी थी।

- अपने पाँच वर्षों के कार्यकाल में सरकार लोकपाल अधिनियम के अनुसार कोई भी नियुक्ति करने में असफल रही। चुनावों के मद्देनजर ही सरकार ने पिछले दिनों लोकपाल के अध्यक्ष एवं आठ सदस्यीय टीम की नियुक्ति की है। इस नियुक्ति में नियमानुसार विपक्षी दल के नेता को शामिल किया जाना था, जिसे नहीं किया गया।
- भारत में भ्रष्टाचार का स्तर केवल उच्च श्रेणी में ही नहीं है, बल्कि निचले स्तर के सरकारी कामकाज में भी बुरी तरह पैठा हुआ है। इसका सीधा प्रभाव जन-सेवाओं की अनियमितता पर पड़ता है। इससे प्रभावित होने वालों में गरीब और वंचित तबके के लोग होते हैं। राशन, पेंशन, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी मूलभूत सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए इन्हें बहुत मशक्कत करनी पड़ती है। इसे दूर करने के लिए 2011 में ग्रीवेन्स रेड्रेरेसल अधिनियम लाया गया था। 2014 में नई लोकसभा के गठन के साथ ही इसे फिर से प्रस्तावित किया जाना था, लेकिन ऐसा नहीं किया गया।
- मोदी सरकार के कार्यकाल में सूचना के अधिकार जैसे सशक्त कानून को कमजोर करने के लगातार प्रयास किए जाते रहे। न्यायालय के हस्तक्षेप के बगैर केन्द्रीय सूचना आयोग में एक भी आयुक्त की नियुक्ति नहीं हो सकी। 2018 में सरकार ने सूचना आयुक्त की स्वायत्तता पर प्रहार करने के लिए कुछ सुधारों का प्रस्ताव दिया था, लेकिन जनता के दबाव के चलते ऐसा करना संभव न हो सका।
- जनता के सूचना के अधिकार को सबसे करारा झटका चुनावी बांड की शुरूआत करने से लगा है। संसद में इसे धन विधेयक के रूप में पारित किया गया था। इस विधेयक से राजनीतिक दलों को दी जाने वाली राशि के स्रोत का पता लगाने से जनता को रोक दिया गया। राजनैतिक दलों के लिए करोड़ों की बेनामी राशि प्राप्त करने के द्वार खुल गए।

भ्रष्टाचार पर शिकंजा कसने के लिए भ्रष्टाचार रोधी और शिकायत निवाराण तंत्र बनाने के स्थान पर सरकार ने विमुद्रीकरण और आधार की अनिवार्यता जैसे कदम उठाए। इससे जनता और तंत्र को नुकसान ही हुआ है। भ्रष्टाचार को खत्म करने की दिशा में सरकार ने अपनी किसी भी प्रबल इच्छा शक्ति का कोई परिचय नहीं दिया है। इसने सरकार की छवि को आहत किया है। जनता की दुर्दशा की है।

'द हिन्दू' में प्रकाशित अंजलि भारद्वाज और अमृता जौहरी के लेख पर आधारित। 29 अप्रैल, 2019